Dr. Shyam Shankar.
Associate Professor
Deptt. of Political Science
Raja Singh College, Siwan

अधिकार के विभिन्न सिद्धान्त

According to Prof. Laski—
"Rights are those conditions of social life without which no man can seek in general to be himself at his best."

इस प्रकार अधिकार मानव जीवन के विकास के लिए एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में कायम है। लेकिन अधिकार सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों का विकास विद्वानों द्वारा किया गया है। कुछ विद्वान अधिकार को प्राकृतिक मानते हैं तो कुछ इसे ऐतिहासिक विकास का प्रतिफल मानते हैं। इन दोनों से भिन्न कुछ विद्वान इसे राजकीय कानून की उपज बताते हैं तो कुछ इसे सामाजिक कल्याण के रूप में समाज की देन बताते हैं। अधिकार सम्बन्धी विभिन्न सिद्धान्तों को निम्न शीर्षकों में व्यक्त किया जा सकता है—

1.10 1. प्राकृतिक अधिकार का सिद्धान्त— इस सिद्धान्त के अनुसार मानवीय अधिकार प्राकृतिक है और इन्हें जन्मसिद्ध अधिकार भी कहा जाता है। आशीर्वादम् ने इस संदर्भ में लिखा है—"They (Rights) are as much a part of man's nature as say, the colour of his skin. They do not require an elaborate explanations or justification. They are self evident truths." ये सिद्धान्त जन्मजात तथा पूर्णतः सामाजिक है। इन अधिकारों का संबंध जीवन स्वतंत्रता एवं सुख से है। लास्की ने इसे स्पष्ट करते हुए बताया है कि "सभी मनुष्य स्वतंत्र और विवेकी पैदा होते हैं और समाज में आने के पूर्व ही से ये अधिकार प्राप्त होते हैं

जैसे Hobbes, Locke एवं Rousseau सामाजिक समझौता सिद्धान्त के प्रतिपादक इसके सबसे बड़े समर्थक रहे हैं। इनके अनुसार राज्य की उत्पत्ति से पहले ही व्यक्ति को कुछ अधिकार प्राप्त थे जिसे प्राकृतिक अधिकार कहा जाता है। समझौतावादी विद्वानों के अनुसार समझौता करते समय कई इन अधिकारों में से कुछ को ~~स्वेच्छ~~ राज्य को सौंप दिया ताकि उनके शेष अधिकारों की रक्षा हो सके।

प्राकृतिक ~~सिद्धान्त~~ अधिकार के सिद्धान्त के आधार पर ही 1789 में फ्रान्स की राज्य क्रान्ती के समय स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का नारा बुलंद किया गया था। इसी मान्यता के अन्तर्गत 1776 में अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा में समानता, जीवन एवं स्वतंत्रता के अधिकारों को अक्षुण्ण घोषित किया गया। इस सिद्धान्त के आधार पर ही वर्तमान समय में भोजन, वस्त्र, निवास और आजीविका को व्यक्ति के प्राकृतिक अधिकार मानकर उन्हें पूरा करना राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का मूल लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

प्राकृतिक अधिकार के इस सिद्धान्त ने मानव के अधिकारों का महत्व उस समय स्थापित किया जब मनुष्य को भेड़ बकरियों से ज्यादा नहीं माना जाता था। लेकिन वर्तमान में यह सिद्धान्त अब उतना महत्वपूर्ण नहीं रह गया है तथा इसकी आलोचना की जाती है कि यह सिद्धान्त अस्पष्ट और भ्रामक है। कुछ विद्वान स्वतंत्रता को प्राकृतिक बताते हैं जबकि कुछने दासता को प्राकृतिक बताया। प्राकृतिक अवस्था में कौन कौन से अधिकार व्यक्ति को प्राप्त थे और वर्तमान में उसे कौन कौन से अधिकार मिलने चाहिए। इस संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को प्रकृति की देन माना जाता है इसलिए उसके अधिकारों पर कोई नियंत्रण नहीं लगना चाहिए जबकि व्यवहार में समानता और स्वतंत्रता के अधिकारों का प्रयोग बिना प्रतिबंधों की विद्यमानता में संभव ही नहीं है।

इस सिद्धान्त के द्वारा अधिकार को सामाजिक मान्यता नहीं दी गई है जबकि समाज से अलग अधिकार की कल्पना ही नहीं की जा सकती। ~~Banquet~~ Bosanquet ने लिखा कि A right is a claim recognised by the society and

enforced by the State. इसी प्रकार Gilchrist कहा - Rights arise from the fact that man is a social being. इस प्रकार अधिकार के प्राकृतिक सिद्धान्त को मान्यता नहीं दी गई है। लेकिन यदि प्राकृतिक अधिकार का यह अर्थ लगाया जाए कि वे मानव के आदर्श देखाते हैं, जिससे मानव को वंचित नहीं किया जा सकता तो यह सिद्धान्त बहुत हद तक सही प्रतीत होता सकता है। इस संदर्भ में Lord ने ठीक ही कहा है - Natural rights are those conditions, whether afford by human agency or not, which are required for the development of individuality.

6.38 2. अधिकार सम्बन्धी कानूनी सिद्धान्त — Legal theory of rights — इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार प्राकृतिक या स्वाभाविक नहीं बल्कि कृत्रिम है। यह राज्य की इच्छा से कानून द्वारा प्रदान किया जाता है। एक व्यक्ति के केवल वही अधिकार होते हैं जिन्हें राज्य मान्यता प्रदान करता है। हमारे अधिकारों का अस्तित्व राज्य की इच्छा और कानून पर निर्भर करता है।

वैधानिक अथवा कानूनी सिद्धान्त अधिकारों की निरपेक्षता को स्वीकार नहीं करता है। तथा इस बात का प्रतिपादन करता है कि सामाजिक हित में व्यक्ति के अधिकारों को प्रतिबंधित किया जा सकता है। बेंथम, ऑस्टिन, हाब्स एवं Halland आदि विद्वानों ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है।

आलोचकों ने इसकी आलोचना करते हुए कहा है कि राज्य अधिकारों का जन्मदाता नहीं है बल्कि उसे मान्यता देता है। यदि राज्य को अधिकारों का जन्मदाता मान लिया जाए तो राज्य निरंकुश और स्वेच्छाचारी हो जाएगा तथा अपनी सत्ता को बनाये रखने के लिए वह व्यक्ति के अधिकारों का ही अन्त कर सकता है। वास्तव में राज्य के कार्य की कुछ निश्चित सीमाएँ है। नैतिकता, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं से यह बंधा होता है।

इसके साथ ही कानूनी अधिकार सिद्धान्त की यह भी आलोचना की जाती है कि अधिकार का आधार कानून नहीं बल्कि औचित्य की भावना होती है। वास्तव में व्यवहार में देखा जाता है कि समाज द्वारा मान्यता प्राप्त अधिकारों को ही राज्य द्वारा स्वीकृत किया जाता है।

Scanned with CamScanner

S.28 3. अधिकार सम्बन्धी ऐतिहासिक सिद्धान्त — इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार न तो प्राकृतिक होते हैं और न ही राज्य द्वारा इसका निर्माण किया जाता है बल्कि वर्षों से जिन रीति-रिवाजों का हम पालन करते रहे होते हैं उन्ही रीति-रिवाजों को समाज की स्वीकृति के बाद अधिकार के रूप में मान्यता प्राप्त हो जाती है। Prof. Ritchie ने कहा है — "Those rights that people think, they ought to have are just these rights which they have been accustomed to have or which they have by tradition, whether true or false, or having once Possessed." इसी प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से इस सिद्धान्त का समर्थन करते हुए बर्क ने कहा - इंगलैण्ड की गौरवपूर्ण क्रान्ती का आधार अंग्रेजों के रीति-रिवाजों पर आधारित अधिकार ही थे।

इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए विद्वानो ने कहा है कि रीति-रिवाज पर भले ही हमारे कुछ अधिकार आधारित हो सकते हैं लेकिन सभी अधिकारों के आधार रीति-रिवाज नही हो सकते। दूसरे सभी रीति रिवाज भी समाज या मानव कल्याण के हित मे नही होते है जैसे- दास प्रथा, सती प्रथा बहुपत्नी एवं बाल विवाह के रिवाज हमारे समाज मे रहे हैं। इन रिवाजों को अधिकारों का आधार नही बनाया जा सकता। क्योंकि ये न तो व्यक्ति के हित मे है न समाज के। तीसरे, यदि इसे अधिकार का आधार मान लिया जाय तो सुधार की संभावना ही खत्म हो जायेगी। जैसे पहले भारत मे समुद्र मार्ग अथवा वायु मार्ग से विदेश जाने का रिवाज नही था और इस रिवाज को अधिकार का आधार बना दिया जाता तो आज हम सब कूप मंडूक बनकर रह जाते।

1.22 4. अधिकार सम्बन्धी समाज कल्याण सिद्धान्त — The Social welfare theory of rights — इस सिद्धान्त के अनुसार अधिकार समाज की देन है। और इसका अस्तित्व समाज कल्याण पर आधारित होता है। साथ ही व्यक्ति उन्ही अधिकारों का उपयोग कर सकता है जो समाज हित मे हो। बेंथम, मिल, रास्को पाउण्ड एवं प्रो० चेफर आदि विद्वानो ने इस सिद्धान्त का समर्थन किया है। बेंथम के अनुसार greatest happiness of the greatest number के आधार पर ही अधिकार मिलने चाहिए। प्रो० लास्की ने भी इसका समर्थन करते हुए कहा है — I cannot have rights against the public welfare, for that

ultimately is to give me rights against a welfare, which is intimately and inseparately associated with my own."
अर्थात लोक कल्याण के विरुद्ध मेरे कोई अधिकार नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसा करना मुझे उस कल्याण के विरुद्ध अधिकार देना है जिसमें मेरा कल्याण घनिष्ठ व अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि लोकहित अधिकारों की सबसे अच्छी कसौटी है। लेकिन लोकहित अस्पष्ट तथा अनिश्चित होते हैं। साथ ही यदि व्यक्तिगत हित और लोकहित में संघर्ष होता है तो उस स्थिति में क्या होना चाहिए यह एक समस्या बन जाती है। इस सिद्धान्त के अनुसार समाज हित में व्यक्तिगत हित को बलिदान कर देना चाहिए। यहाँ यह सवाल उठता है कि क्या एक निर्दोष व्यक्ति का बलिदान समाज हित में किया जाना उचित है? इन आलोचनाओं के बावजूद यह सच है कि अधिकारों का आधार समाज हित होता है।

13.41 5. अधिकार सम्बन्धी आदर्शवादी या व्यक्तित्ववादी सिद्धान्त – The Idealistic theory of Rights — इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति के जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना है तथा अधिकार वे बाहरी परिस्थितियाँ हैं जो व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक होती हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार चूंकि अधिकारों के अस्तित्व का उद्देश्य एक आदर्श व्यक्तित्व के विकास की प्राप्ति माना जाता है इसलिए इसे आदर्शवादी सिद्धान्त कहा जाता है। इसके अधिकारों के अस्तित्व का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास है इसलिए इसे व्यक्तित्ववादी सिद्धान्त भी कहा जाता है।

यह सिद्धान्त इस बात का प्रतिपादन करता है कि व्यक्ति को वे ही अधिकार प्रदान किये जाने चाहिए जो उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हों। यह न तो गलत अधिकारों का समर्थन करता है और न ही उचित अधिकारों से वंचित। इसके यह सिद्धान्त न तो प्राकृतिक सिद्धान्त की तरह अधिकारों की निरपेक्षता या असीमितता का समर्थन करता है न ही वैधानिक या समाज कल्याण सिद्धान्त की तरह अधिकारों की सापेक्षता का प्रतिपादन करते हुए यह कहता है कि समाज या राज

Scanned with CamScanner

6

अधिकारों पर मनचाहा प्रतिबंध लगा सकता है।

इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए विद्वानों ने इसे अव्यवहारिक सिद्धान्त कहा है, क्योंकि व्यक्तित्व का विकास एक आन्तरिक और व्यक्तिगत मामला है। समाज या राज्य इस बात को नहीं जान सकता कि व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए कौन सी परिस्थितियाँ अथवा सुविधाएँ आवश्यक हैं। लेकिन यह आलोचना त्रुटिपूर्ण है क्योंकि वास्तव में व्यक्ति का व्यक्तित्व बाहरी परिस्थितियों का परिणाम होता है। और एक बड़ी सीमा तक उसका विकास बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर करता है। कोई भी विवेकशील व्यक्ति इस बात से इंकार नहीं कर सकता कि राज्य शिक्षा, स्वास्थ्य की देखभाल और रोजगार की उचित व्यवस्था करके व्यक्तित्व के विकास में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार इस सिद्धान्त का यह प्रतिपादन कि व्यक्तित्व के विकास रूपी आदर्श की प्राप्ति के लिए जो कुछ आवश्यक है, वह व्यक्ति का अधिकार है, उचित प्रतीत होता है।

———— ◦ ————

16.12

Scanned with CamScanner